संपादकीय...

बीमार स्वास्थ्य सेवाएं

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह अपनी सरकार की सबसे बड़ी उपलब्धि यह मानते हैं कि अंतरराष्ट्रीय मंदी और अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद भारत अपने आर्थिक विकास की दर आठ से नौ प्रतिशत तक बनाए रखने में कामयाब रहा है। मगर यह विकास तब सवालों के घेरे में दिखने लगता है, जब देश की कुछ दूसरी तस्वीरें सामने आती हैं और इनमें एक स्वास्थ्य सेवाओं का हाल है। नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन की अध्यक्षता में हाल में हुई कोलकाता ग्रुप की बैठक में इस तरफ ध्यान खींचा गया कि कई देश, जिनकी प्रति व्यक्ति आय भारत से कम है, अपने नागरिकों को बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं मुहैया करा रहे हैं। भारत में स्वास्थ्य सेवाओं पर सकल घरेलू उत्पाद का एक फीसदी से कुछ ही ज्यादा खर्च किया जाता है। दरअसल, भारत इस मद में सबसे कम खर्च करने वाले देशों में है। विशेषज्ञों के मुताबिक समस्या की जड़ में सरकारी नीतियां हैं, जिन पर इस विचार का असर बढ़ता गया है कि स्वास्थ्य को निजी क्षेत्र में छोड़कर और स्वास्थ्य बीमा के लिए सब्सिडी बढ़ाकर सबको स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराई जा सकती हैं। दूसरी तरफ जो सरकारी योजनाएं हैं, उन पर अमल नहीं होता है। कुछ मीडिया रिपोर्टों में ध्यान दिलाया गया है कि राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के तहत सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों के स्तर पर डॉक्टरों एवं अन्य विशेषज्ञों की 64 फीसदी कमी है, जबकि पिछले सितंबर तक इस योजना के तहत आवंटित धन का 32 फीसदी कम इस्तेमाल किया गया था। दरअसल आंगनवाड़ी, सर्वशिक्षा अभियान और मनरेगा जैसी दूसरी विकास योजनाओं की हालत भी इससे बेहतर नहीं है। सरकार के सामने चुनौती तेज विकास और उससे बढ़ रहे संसाधनों को सही जगह पर लगाने और उनके पूरे उपयोग को सुनिश्चित करने की है, वरना देश के विकास की कहानी अधूरी ही बनी रहेगी।

जीने की राह... **पं. विजयशंकर मेहता**

बुढ़ापे में ही नहीं जवानी में भी ईश्वर को याद करें

जिसकी शुरुआत है उसका अंत जरूर होगा। जीवन है तो मृत्यु होना ही है। अपने अंत को जो आरंभ से समझ लेता है, उसका आरंभ भी दिव्य होता है और अंत तक पहुंचने की यात्रा भी मस्ती में बीत जाती है। तुलसीदासजी ने हनुमानचालीसा की 34वीं चौपाई में लिखा है - *अंत काल रघुबर पुर जाई। जहां जन्म हरि-भक्त कहाई।।* अंतिम समय जब आता है, तब हम कहते हैं कि अरे, अंतिम समय आ गया, अब राम नाम लिया जाए। अंतिम समय नाम हम इसलिए लेते हैं कि हमारा अगला जीवन अच्छा हो। दरअसल हमारा अंतिम ही अगले जीवन का प्रारंभ है। जो इच्छा हमारी अंतिम समय में रहती है, वह हनुमानजी पूरी कर देते हैं। इसलिए जीवन के अंतकाल में सभी बहुत सावधान हो जाते हैं। मंदिरों, तीर्थस्थलों, कथा-प्रवचनों के पांडालों में वृद्धजन ही अधिक पहुंचते हैं। मंदिर सिर्फ बुढ़ापे के विश्रामालय बन गए, तीर्थ थके पांव की मंजिलों में तब्दील हो गए। पूजा-पाठ, सत्संग में कम ही युवा बैठते हैं। ताजे फूल भगवान को चढ़ाए जाने चाहिए, लेकिन मुरझाए फूल भगवान को चढ़ रहे हैं। तात्पर्य यह कि परमात्मा के प्रति जवानी में समर्पित होना चाहिए, तभी अच्छे संस्कार पाएगी नई पीढ़ी। हम खान-पान सदैव ताजा ग्रहण करते हैं, किंतु स्वयं ताजा, नया और नूतन रहकर ईश्वर को अर्पित नहीं होते। यदि हम बाल्यकाल और युवावस्था में सजग रहकर ईश्वर के प्रति समर्पित रहें, तो इसका श्रेष्ठ फल मिलेगा।

humarehanuman@gmail.com

जीवन दर्शन...

अधिकार की सही परिभाषा समझाई ऋषि शंख ने

शंख और लिखित दो भाई थे। दोनों अलग-अलग आश्रमों में रहते थे। एक बार लिखित शंख के आश्रम पर आए। शंख आश्रम में नहीं थे। लिखित को भूख लगी, तो वे आश्रम में लगे वृक्षों से फल तोड़कर खाने लगे। इतने में ही शंख आ गए। उन्होंने लिखित से पूछा - भैया, तुम्हें ये फल कहां से मिले? लिखित ने कहा - ये इसी पेड़ से तोड़े हैं। शंख बोले - तब तो तुमने चोरी की। अब तुम राजा के पास जाकर कहो - मुझे वह दंड दें, जो एक चोर को दिया जाता है। लिखित ने राजा सुद्युम्न के पास जाकर वैसा ही कहा। तब राजा बोले - यदि मुझे दंड देने का अधिकार है, तो क्षमा करने का भी है। मैं आपको क्षमा करता हूं। किंतु लिखित ने दंड देने का अपना आग्रह जारी रखा। अंत में राजा ने नियमानुसार उनके दोनों हाथ कटवा दिए। अब लिखित ने पुनः शंख से क्षमा मांगी। शंख ने लिखित को नदी पर जाकर देवता व पितरों का विधिवत तर्पण करने को कहा। लिखित द्वारा कार्य संपन्न होते ही उनके कटे हाथ पुनः जुड़ गए। उन्होंने शंख को जाकर यह बात बताई, तो शंख बोले, मैंने अपने तप के प्रभाव से ये हाथ उत्पन्न किए हैं। लिखित ने पूछा - यदि आपके तप का ऐसा प्रभाव है तो आपने पहले ही मेरी शुद्धि क्यों नहीं कर दी? शंख ने जवाब दिया - किंतु तुम्हें दंड देने का अधिकार मुझे नहीं, राजा को ही था। इससे राजा के अधिकार का पालन हुआ और तुम भी दोषमुक्त हो गए। वस्तुतः अधिकारों का संबंधित व्यक्ति द्वारा उपयोग करना उचित न्याय है। दंड भोगने पर ही उसका सही पश्चाताप होता है।

भास्कर पीडिया... **साइकिल का सफर**

19वीं सदी के शुरुआती दौर में बनी थी पहली साइकिल

साइकिल के इतिहास पर नजर दौड़ाएं तो पता चलता है कि वर्ष 1816 में जर्मन नागरिक बेरॉन कार्ल वॉन ड्रेज ने दो पहियों वाला लकड़ी का ऐसा यंत्र बनाया था, जिसे चालक को अपने पैरों के सहारे ही घसीटना पड़ता था। 1840 में मैकमिलन नामक एक स्कॉटिश लोहार ने इसमें थोड़ा सुधार करते हुए दो पहियों का यंत्र बनाया, जिसे एक ट्रेडल के सहारे चलाया जा सकता था। 1860 का दशक साइकिल के विकास के लिहाज से अहम है, जिस दौरान इसके साथ हल्का खोखला स्टील फ्रेम, बॉल-बियरिंग, धात्विक-स्पोक वाले पहिये और रबर के टायर जैसी चीजों का समावेश हुआ। 1866 में इंग्लैंड के जेम्स स्टेनले ने ऐसी साइकिल तैयार की, जिसका अगला पहिया पिछले पहिये के मुकाबले काफी बड़ा था। हालांकि इसमें वजन का सही संतुलन न होने की वजह से यह ज्यादा सफल नहीं रहा। आखिरकार वर्ष 1885 में इंग्लैंड के ही एक और नागरिक जॉन केंप स्टारले रोवर सेफ्टी नामक ऐसी साइकिल लेकर आए, जिसमें पहियों का समान आकार, डायमंड साइज फ्रेमिंग जैसी खूबियां थीं और जिसके पिछले पहिये को चेन के सहारे पैडल से घुमाकर आगे बढ़ाया जा सकता था। इसे आधुनिक साइकिल का प्रतिरूप कहा जा सकता है।

गुरचरन दास

लेखक जाने-माने स्तंभकार और साहित्यकार हैं।

gurcharandas@gmail.com

अनंत संभावनाओं का भारत

भारत की तेजी से बढ़ रही अर्थव्यवस्था के कारण 30 करोड़ लोग मध्यवर्ग में शामिल हो चुके हैं और वर्ष 1980 के बाद से 25 करोड़ लोगों को गरीबी की स्थिति से उबारा जा चुका है।

मध्यवर्ग के सपनों की उड़ान

भारत की राजनीति के सामने दो रास्ते हैं। ये दो रास्ते दो विभिन्न रवैयों के चिर-परिचित विभाजन को प्रदर्शित करते हैं। एक तरफ वे हैं, जो आगे की ओर देख रहे हैं और आकांक्षाओं से भरे हैं, दूसरी तरफ वे हैं जो पीछे देख रहे हैं और गिले-शिकवे कर रहे हैं। हमारी राजनीतिक पार्टियां दूसरी श्रेणी के लोगों पर केंद्रित हैं। संसद में गतिरोध और महंगाई पर सरकार की प्रतिक्रियाएं भी इसी हतोत्साहित कर देने वाली राजनीति के लक्षण हैं। वास्तव में कोई भी पार्टी गतिरोध को तोड़ने या सुधार के लिए पर्याप्त प्रतिबद्ध नहीं है। कोई भी पार्टी तेजी से बढ़ते भारत की भावना को प्रदर्शित नहीं करती। न ही किसी की सोच व्यापक है। लेकिन मौजूदा परिस्थितियों में छोटी और संकीर्ण सोच एक आपराधिक कृत्य है। जब तक उस खाली जगह को नहीं भरा जाता, तब तक हमारी राजनीति कभी भी समग्र नहीं हो पाएगी।

कांग्रेस 'आम आदमी' को लुभाने की कोशिश करती है। रोजगार गारंटी योजनाओं और खाद्य पदार्थों, गैस, केरोसीन पर सब्सिडी बढ़ती चली जा रही है। भारतीय जनता पार्टी मुस्लिम शासकों के ऐतिहासिक कुप्रशासन और कांग्रेस की वोट बैंक की नीति से नाराज लोगों को केंद्र में रखकर अपनी राजनीति करती है। मायावती और जाति आधारित पार्टियां दलितों और पिछड़ों के साथ हुए ऐतिहासिक अन्याय पर ध्यान केंद्रित करती हैं। शिवसेना 'मराठी मानुष' के आहत सम्मान की भावना को बढ़ावा देती है। ये सभी राजनीतिक पार्टियां अन्याय और असंतोष की राजनीति को पोषित कर रही हैं।

दूसरी तरफ भारत तेजी से बदल रहा है। यह किसी चमत्कार से कम नहीं है कि लचर प्रशासन के बावजूद भारत दुनिया की दूसरी सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था बन गया है। ऊंची विकास दर, गतिशीलता और युवाशक्ति के बूते जल्द ही वैश्विक आकांक्षाओं से भरे भारतीय उन लोगों से आगे निकल जाएंगे, जो स्वयं को किसी न किसी परिस्थिति का शिकार मानते हैं। सर्वेक्षण बताते हैं कि बहुत से भारतीय यह मानते हैं कि वे अपने जीवन में अपने माता-पिता की तुलना में अधिक सफल हैं और उनके बच्चे उनसे भी ज्यादा कामयाब होंगे। पिछले माह भारत के जिस व्यक्ति को 75 करोड़वां फोन नंबर मिला, वह गांव से शहर आया एक प्रवासी था। वर्ष 2013 में भारत के 10 करोड़वें इंटरनेट उपयोगकर्ता को वे जानकारियां भी प्राप्त होंगी, जो आज से 20 साल पहले तक चुनिंदा लोग ही प्राप्त कर सकते थे। लेकिन भारत की राजनीति में कोई भी व्यक्ति इन उम्मीदों का प्रवक्ता नहीं बन रहा है।

भारत की तुलना में चीन के राजनेता कहीं बेहतर प्रदर्शन कर रहे हैं। जहां हम यह बहस कर रहे हैं कि हमारा विकास गरीबों के पक्ष में है या नहीं, वहीं चीन अमीर होने की बात करता है। वह इसे समझता है कि अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए अच्छा प्रदर्शन करना पड़ता है। जिन लोगों की अपेक्षाएं आकाश को छूती हैं, वे उतना ही ऊंचा प्रदर्शन भी करते हैं। चीन अब स्वयं को तीसरी दुनिया का देश नहीं मानता। आज वह अमेरिका को चुनौती दे रहा है। भारत में नीतीश कुमार, शीला दीक्षित, नरेंद्र मोदी जैसे कुछ गिने-चुने ही राजनेता ऐसे हैं, जो नए भारत की महत्वाकांक्षाओं को प्रेरित करते हैं। वे सुशासन की बातें करते हैं। सड़कें और स्कूल बनवाने के बारे में बात करते हैं। हमें उन जैसे और नेताओं की जरूरत है।

जब मैंने ये बातें कांग्रेस के एक सशक्त नेता से कहीं, तो उन्होंने कहा कि 'इंडिया शाइनिंग' का नारा 2004 के चुनाव में ही दम तोड़ चुका है। मैंने विनम्रता के साथ उन्हें याद दिलाया कि भारत की तेजी से बढ़ रही अर्थव्यवस्था के कारण 30 करोड़ लोग मध्यवर्ग में शामिल हो चुके हैं और वर्ष 1980 के बाद से 25 करोड़ लोगों को गरीबी की स्थिति से उबारा जा चुका है। इसका मतलब यह है कि आशा से भरे हुए 55 करोड़ लोग ऐसे हैं, जिन पर निश्चित ही चुनावी राजनीति में भरोसा किया जा सकता है। उन्होंने कहा, लेकिन 55 करोड़ लोग ऐसे भी तो हैं, जो गरीबी से जूझ रहे हैं और उनके वोट 'शाइनर्स' के वोटों से ज्यादा भरोसेमंद हैं। इसका मतलब तो यह हुआ कि अगर भारत से गरीबी खत्म होती है तो कांग्रेस पार्टी का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।

ऐसे में क्या भाजपा आकांक्षाओं की पार्टी बन सकती है? अटलबिहारी वाजपेयी ने टेलीकॉम और आईटी क्रांति को बढ़ावा देते हुए इस दिशा में प्रयास किया था। वास्तव में 2004 के चुनाव में उनके 'इंडिया शाइनिंग' के नारे को हार नहीं मिली थी। आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु में राजग के मुख्य सहयोगियों की हार का खामियाजा सरकार को भुगतना पड़ा था। लेकिन वाजपेयी भी हिंदुत्व के नारे को नहीं त्याग पाए थे। आज भाजपा में ऐसा कोई नहीं है, जिसमें इतना साहस या अंतर्दृष्टि हो कि वह पार्टी को सुधारों और सुप्रशासन पर केंद्रित एक धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक दल में परिवर्तित कर सके।

आकांक्षाओं पर आधारित राजनीति हमारी समस्याओं को अलग तरह से लेगी। मिसाल के तौर पर खाद्य पदार्थों की बढ़ती कीमतों को ही ले लें। असंतोष की राजनीति इससे जूझने के लिए नकारात्मक कदम उठाती है। वह बंपर आवक के बावजूद विदेशी निर्यात पर रोक लगा देती है, जबकि दूसरी तरफ 17 हजार करोड़ का अनाज खुले में सड़ता रहता है। इसके स्थान पर आकांक्षाओं की राजनीति कृषि की स्थिति में सुधार करने का प्रयास करती और आपूर्ति के तंत्र को बेहतर बनाती।

भारत की राजनीति में इस खाली जगह को कौन भरेगा? हमारी कोई भी पार्टी यह नहीं समझ रही है कि हम परिवर्तन के एक क्रांतिकारी दौर से गुजर रहे हैं। क्या राहुल गांधी यह कर सकते हैं? लेकिन अभी तक उन्होंने ऐसा कोई संकेत नहीं दिया है कि उनका दृष्टिकोण व्यापक है। पिछले पांच साल में भारत में कपास की पैदावार बढ़कर दोगुना हो गई है, इसके बावजूद कपास उत्पादक क्षेत्रों में किसान आत्महत्या कर रहे हैं। ये दोनों तथ्य सही हैं। राहुल गांधी ने किसानों की आत्महत्याओं पर ध्यान केंद्रित करने का निर्णय लिया है, लेकिन भविष्य का निर्माण उन नेताओं द्वारा किया जाएगा, जो पहले तथ्य पर ध्यान केंद्रित करेंगे, जिनकी सोच व्यापक होगी और जो भारत के युवाओं में असीम संभावनाओं की भावना पैदा करने में सक्षम होंगे।

भारत की राजनीति में इस खाली जगह को कौन भरेगा? हमारी कोई भी पार्टी यह नहीं समझ रही है कि हम परिवर्तन के दौर से गुजर रहे हैं। क्या राहुल गांधी यह कर सकते हैं? लेकिन अभी तक उन्होंने ऐसा कोई संकेत नहीं दिया है कि उनका दृष्टिकोण व्यापक है।

मार्च 1989

में कंप्यूटर वैज्ञानिक सर टिम बर्नर्स-ली ने सबसे पहले वर्ल्ड वाइड वेब शब्दों का उपयोग किया था।

इसे व इसके संक्षिप्त स्वरूप डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू को पूरी दुनिया में इंटरनेट का समानार्थी माना जाता है।

भास्कर ब्लॉग... **अजीत गांधी** ajitg23@rediffmail.com

चवन्नी गुमनाम हुई महंगाई तेरे लिए

निगोड़ी चवन्नी जा रही है। खत्म हो रही है मुन्नी और शीला के जमाने में। जून में विदा हो जाएगी। चवन्नी के भी क्या दिन थे! एक जमाना हुआ करता था, जब उसका भी अपना जलवा था। खुद तो खनकती ही थी, रसिया और छलिया लोगों के काम में भी आती थी। दीवाने उसी को मददगार मान दिल मांग लिया करते थे। कुछ तो खुल्लमखुल्ला कहते भी थे - राजा दिल मांगे चवन्नी उछाल के। कहने भर की देर थी कि उछल जाती थी बेचारी चवन्नी दीवानों की खातिर। यह देखे और समझे-जाने बिना कि राजा को दिल मिला या नहीं। उसकी दुनिया में कोई भेदभाव नहीं था। कोई छोटा या बड़ा नहीं। पंसारी से लेकर दिलफेंक लोगों तक, सबके लिए थी चवन्नी। बीड़ी सूंटने वाले जब *बीड़ी जलई ले* गाना नहीं गाया करते थे, तब भी इकलौती चवन्नी पंसारी की दुकान से बीड़ी का बंडल दिलवा दिया करती थी। एक जमाना वो भी था कि बस एक चवन्नी में लजीज मगही पान का भी स्वाद लिया जा सकता था। चवन्नी के भी बड़े जलवे थे। वो कोई छोटी-मामूली चीज नहीं थी। कमाल की हुआ करती थी। एक छोटी-सी चवन्नी की भी बड़ी कीमत थी। उसे सरकार ने कीमत के साथ उतार रखा था बाजार में।

लेकिन वक्त गुजरा है। चवन्नी ने भी बड़े जमाने देखे हैं। जमाना-दर-जमाना भटकती रही है। उसे अपनाया गया, छोड़ा गया। सिर-माथे पर बिठाया गया और फिर उतार भी दिया गया। उसे हथेली पर लाया गया और फिर जेब से बाहर निकाला गया। पहली बार चवन्नी आई थी बाजार में 1957 के बाद, जब हमने अपनाई थी मीट्रिक प्रणाली। 1964 तक चवन्नी चलती रही। चार आना के रूप में। किस्मत ने उसका साथ छोड़ा और अप्रैल 1968 में ऐसा भी वक्त आया, जब बीस पैसे के सिक्के ने बेचारी चवन्नी को धकिया दिया।

बीस पैसे के सिक्के से खार खाई चवन्नी फिर जन्मी 1972 में और इस बार जब आई तो 20 पैसे के सिक्के की दोबारा ये हिम्मत नहीं हुई कि वह चवन्नी को टकसाल से बाहर निकलवा सके। 1988 में तो स्टेनलेस स्टील के रूप में चमचमाती आई थी वह। तब से चवन्नी उछलती रही हमारी-आपकी जेब में। अब फिर वक्त आ गया है, जब चवन्नी हमारी-आपकी जेबों और घरों से रुखसत हो रही है। टकसाल से, खजाने से, हथेली से और जिंदगी से। चवन्नी के इस बार जाने और पहले विदा होने में फर्क दिखता है। पहले जब चवन्नी को इतिहास में धकेला जाता था, तब कारण कुछ और होते थे। तब वह नए-नए प्रयोगों के कारण विदा की जाती थी। लेकिन कभी ऐसा न हुआ कि वो इस तरह चली जाए कि लौटकर ही न आए।

इस बार चवन्नी के विदा किए जाने के कारण बिलकुल जुदा हैं। हमारी-आपकी तरह वह भी महंगाई डायन की चपेट में आ गई है। वह आपके लिए कुछ भी खरीदने के काबिल नहीं रही। बिलकुल कमजोर पड़ गई है। इतनी कमजोर कि एक मूली भी नहीं दिला सकती, दिल की बात तो छोड़ ही दें। चवन्नी इसलिए भी विदा की जा रही है कि उसे ढालने में सरकार महंगाई की मार झेल रही है। उसे सांचे में ढालने की कीमत उसकी खुद की कीमत से अधिक बैठ रही है।

लेकिन चवन्नी को एक शिकायत है हमसे। यह कि हमने उसके जीते-जी उसके साथ बदसलूकी की। उससे कह दिया कि तुम्हारी कोई औकात नहीं। उसके लेन-देन से इंकार किया और सरकार भी कुछ नहीं कर पाई। अपनी बदहाली पर आंसू बहाती चवन्नी को इसका अफसोस रहेगा कि मसखरेपन के जमाने में उससे अब कोई यह नहीं पूछेगा कि तुम फिर कब आओगी चवन्नी? गुड-बाय चवन्नी।

चवन्नी को एक शिकायत है हमसे। यह कि हमने उसके जीते-जी उसके साथ बदसलूकी की। उससे कह दिया कि तुम्हारी कोई औकात नहीं। अपनी बदहाली पर आंसू बहाती चवन्नी को इस बात का अफसोस रहेगा।

बीस पैसे के सिक्के से खार खाई चवन्नी फिर जन्मी 1972 में और इस बार 20 पैसे की दोबारा हिम्मत नहीं हुई कि वह चवन्नी को टकसाल से बाहर निकलवा सके।

बीते कल की बात... **सायरस**

भारत पर हुए प्रारंभिक विदेशी आक्रमणों में ईरानी आक्रमण उल्लेखनीय है। ईसा पूर्व ठी सदी में जब भारत में मगध साम्राज्य का उदय हो रहा था, तभी ईरानी सत्ता का भी विस्तार हो रहा था। ईसा पूर्व 528 में ईरान के शासक सायरस ने गांधार पर हमला बोल दिया था। इस घटना को यूनानी इतिहासकारों द्वारा दर्ज किया गया है।

बात पते की

आगामी समय में वास्तविक नेता वे ही लोग होंगे, जो दूसरों को सशक्त करेंगे।

बिल गेट्स

आज का शब्द... **विदुर**

विदुर शब्द बना है संस्कृत की विद् धातु से। विद् का अर्थ है जानना, समझना, सीखना और खोजना। महाभारत के प्रसिद्ध पात्र, पांडु के ोटे भाई और दासीपुत्र विदुर को मनीषी और बुद्धिमान मनुष्य के तौर पर दर्शाया गया है। विदुर की कार्यशैली पांडवों के लिए फायदेमंद रहती थी। विदुरनीति शब्द से भी बुद्धिमत्तापूर्ण बात ही स्पष्ट होती है।

अशोक चक्रधर खिली बत्तीसी... ashok@ chakradhar.com

इस तरह की और कविताओं के लिए क्लिक कीजिए– www.dainikbhaskar.com

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार और लोकप्रिय कवि हैं।

स्कोर के चक्कर में घनचक्कर

ग्राउंड के पार पूछा -
बता ओ पहलवान
स्कोर क्या है?

घर हो सड़क हो
भवन हो कि दफ्तर, परेशान -
स्कोर क्या है?

दूकान पे आया
ग्राहक ये पूछे -
सुलेमान!
स्कोर क्या है?

ये मंत्र बोलो
और हो लो
किसी के भी मेहमान -
स्कोर क्या है?

आए नहीं चैन
हर कोई बेचैन, बरबाद -
स्कोर क्या है?

दुश्मन
भुला दुश्मनी पूछता है कि
उस्ताद! स्कोर क्या है?

कोई तो पूछे अदा में
करे कोई फरियाद -
स्कोर क्या है?

संवाद सबका
बढ़ा दे मिनिट में
ये संवाद - 'स्कोर क्या है?'

पूछा करें ये भी
पूछा करें वे भी
मन में किसी के भी
हिचकुन्ना।

हिचकुन्ना एक नया शब्द है, जिसका अर्थ है : कोई हिचक नहीं।

पाठक संवाद...

केंद्र भी करे किसानों की चिंता

पारुल, भोपाल से...

किसानों की खराब आर्थिक स्थिति और उनकी आत्महत्याओं की चिंता सिर्फ राज्य सरकार को ही नहीं, केंद्र सरकार को भी होनी चाहिए। यह विषय राजनीति का नहीं, बल्कि भावनात्मक रूप से मिल-जुलकर काम करने का है। भारत की 70 फीसदी जनसंख्या आज भी कृषि पर निर्भर है। इस लिहाज से उनके हितों की रक्षा करना और उनकी समस्याओं पर गंभीरता से काम करना अपरिहार्य है। किसान हमारी राष्ट्रीय चिंता का विषय हैं। इसका समाधान केंद्र और राज्य सरकार दोनों को मिलकर करना चाहिए।

रिश्तों की कुम्हलाती बेल हरी हो

संतोष सिंह, भोपाल से...

रिश्तों की दास्तां भी कितनी अजीब होती है। राजनीति लोगों को भले ही जोड़ने का काम नहीं करे, लेकिन खराब रिश्ते भी सिर्फ इसलिए अच्छे हो जाते हैं कि आखिर वह एक रिश्ता था। 'बड़ी मां मेरी शादी में जरूर आना' शीर्षक से खबर पढ़ी, अच्छा लगा। राजनीति में गांधी (सोनिया गांधी और मेनका गांधी) परिवार भले ही अलग हो, लेकिन वरुण गांधी जब अपनी शादी का कार्ड लेकर सोनिया गांधी के यहां पहुंचे और वहां खाना भी खाया, तो ऐसा लगा कि राजनीति के सामने रिश्ते भारी पड़ गए। लोगों को ऐसे वाकयों से सीखना चाहिए और रिश्तों की कुम्हलाती बेल को फिर हराभरा करना चाहिए।